शोध मंथन Vol. XVI No.3 July.- Sept. 2025 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X, Impact Factor 8.877 (SJIF)
https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2025.v16i03.71

उत्तरकाशी की जाड़ जनजाति की ऊन–बुनाई परंपराः पारंपरिक तकनीकें और वर्तमान चुनौतियाँ

प्राप्तिः 12.08.2025
स्वीकृतः 18.09.2025

71

प्रमोद सिंह
शोधार्थी (इतिहास विभाग)
स्वामी राम तीर्थं परिसर,
बादशाहीथौल टिहरी गढ़वाल
एच0 एन0 बी0 गढ़वाल (केन्द्रीय)
विश्वविद्यालय, उत्तराखंड
ईमेलः *pramodkohli4728@gmail.com*

सोनम ठाकुर
शोधार्थी (समाजशास्त्र विभाग)
स्वामी राम तीर्थं परिसर,
बादशाहीथौल टिहरी गढ़वाल
एच0 एन0 बी0 गढ़वाल (केन्द्रीय)
विश्वविद्यालय, उत्तराखंड

डॉ0 विनीता कोहली
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
(राजनीति विज्ञान विभाग)
रामचंद्र उनियाल राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
उत्तरकाशी, उत्तराखंड

सारांश

उत्तरकाशी की जाड़ जनजाति (भोटिया जनजाति की उपशाख) की ऊन बुनाई परंपरा उनकी सांस्कृतिक पहचान, सामुदायिक एकता और आर्थिक आत्मनिर्भरता का महत्वपूर्ण आधार है। यह शोध पत्र जाड़ जनजाति की पारंपरिक ऊन बुनाई तकनीकों, जैसे ऊन काटना, छंटाई, सफाई, कार्डिंग, कताई, रंगाई और बुनाई, का अध्ययन करता है, जो पर्यावरण–अनुकूल और टिकाऊ हैं। ये प्रक्रियाएँ प्राकृतिक रेशों और रंगों पर आधारित हैं, जो वैश्विक नैतिक फैशन और इको–टूरिज्म की मांग के अनुरूप हैं। जाड़ जनजाति के उत्पाद, जैसे कांशुक, लांगशुग, दोड़ी, गड़री और चपकन, उनकी सांस्कृतिक विरासत को दर्शाते हैं। हालांकि, सीमित बाजार पहुँच, श्रमसाध्य तकनीकें, औद्योगिक उत्पादों से प्रतिस्पर्धा, कच्चे माल की कमी, अपर्याप्त सरकारी सहायता और नई पीढ़ी का घटता रुझान इस कला के समक्ष प्रमुख चुनौतियाँ हैं। शोध में गुणात्मक और वर्णनात्मक पद्धति का उपयोग कर डुंडा और बगोरी गाँवों में कारीगरों, विशेष रूप से महिलाओं, से साक्षात्कार और अवलोकन के माध्यम से डेटा एकत्र किया गया। यह शोध इन चुनौतियों के समाधान के लिए तकनीकी उन्नयन, प्रभावी विपणन और युवाओं को प्रोत्साहन जैसे उपाय सुझाता है, ताकि यह अनमोल कला संरक्षित और प्रासंगिक बनी रहे।

मुख्य बिंदु

जाड़ जनजाति, भोटिया, उत्तरकाशी, ऊन बुनाई, पारंपरिक हस्तकला।

प्रस्तावना

उत्तराखंड, जिसे "केदारखंड" एवं "मानसखंड" के नाम से भी जाना जाता है, अपने प्राकृतिक सौंदर्य, भौगोलिक विविधता, सांस्कृतिक समृद्धि एवं जनजातीय समुदायों की विशिष्टता के लिए विश्व विख्यात है। हिमालय की गोद में बसे इस राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक जनजातियां निवास करती हैं। *इम्पीरियल गजेटियर* के अनुसार'जनजाति परिवारों के ऐसे समुदाय का नाम है जिसका एक समान नाम हो, समान बोली हो, जो एक समान भू–भाग में रहते हों या उस भू–भाग को अपना मानते हों, और जो अपनी जनजाति के भीतर विवाह करते हों। जबकि डॉ. मजूमदार के अनुसार, जनजाति वह सामाजिक इकाई है जो एक ही भू–भाग में निवास करती है, एक भाषा बोलती है तथा विवाह, व्यवसाय और पारस्परिक व्यवहार में विशिष्ट नियमों व निषेधों का पालन करती है तथा आधुनिक सभ्यता एवं संस्कृति से प्रायः विलग रहते हैं। भारत सरकार ने 24 जून 1967 को उत्तराखंड (तत्कालीन उत्तर प्रदेश) की भोटिया, बोक्सा, जौनसारी, थारू एवं राजी समुदायों को अनुसूचित जनजातियों के रूप में अधिसूचित किया। भोटिया जनजाति की एक उपशाखा जाड़ जनजाति है, जो उत्तरकाशी जिले के सीमांत क्षेत्र नेलांग घाटी में निवास करती है। जाड़ जनजाति की एक विशिष्ट पहचान उनकी पारंपरिक ऊन–बुनाई कला है, जो केवल वस्त्र निर्माण का माध्यम ही नहीं, बल्कि उनकी सामाजिक–सांस्कृतिक पहचान और आजीविका का प्रमुख आधार भी है। इस शोध का उद्देश्य उत्तरकाशी की जाड़ जनजाति की पारंपरिक ऊन–बुनाई तकनीक का अध्ययन करना तथा इसके सामने उपस्थित वर्तमान चुनौतियों की पहचान करना है।

भोटिया जनजाति

भोटिया जनजाति उत्तराखंड की प्राचीनतम जनजातियों में से एक है, जो सात प्रमुख समूहों– जोहारी, दारमी, चौदांसी, ब्यांसी, मारछा, तोल्छा और जाड़ में विभाजित है। इनकी बस्तियाँ मुख्य रूप से पिथौरागढ़ जिले की जोहार, दारमा, ब्यांस और चौदांस घाटियों में, चमोली जिले की माणा और नीती घाटियों में, तथा उत्तरकाशी जिले की नेलांग और जादुंग घाटियों में स्थित हैं। इन सीमांत घाटियों को ''भोटान्त' और वहाँ के निवासियों को 'भोटान्तिक' या 'भोटिया' भी कहते है। क्रुक के अनुसार भोटिया शब्द की उत्पत्ति भोट अथवा भूट से हुई है। उत्तराखण्ड के तिब्बत (चीन) तथा नेपाल सीमा से जुड़े क्षेत्र को भोट या भूट क्षेत्र कहा जाता है। यह भूभाग जिसमें यह जनजाति निवास करती है, कभी तिब्बत की राजसत्ता भोट के अधीन थी, इसी कारण इस भूभाग को 'भोट' और इसमें निवास करने वाली जाति को 'भोटान्तिक' या 'भोटिया' कहा गया। जबकि राहुल सांकृत्यायन ने इनकी शारीरिक विवेचना के आधार पर इन्हे प्राचीन किरात, जिन्हें आज मौनख्मेर के नाम से जाना जाता है, के अवशेष माना है। भोटिया जनजाति तिब्बती एवं मंगोलियन जाति का मिश्रण है। छोटा कद, बड़ा सिर, गोल चेहरा, छोटी आंखें, चपटी नाक, गोरा रंग, शरीर पर बालों की कमी आदि इनकी शारीरिक विशेषताएं हैं।

जाड़ जनजाति उत्तरकाशी जिले की एकमात्र जनजाति है, जो मुख्य रूप से डुंडा और बगोरी क्षेत्रों में निवास करती है सन् 1962 ई० तक इनका मुख्य व्यवसाय तिब्बत से सक्रिय व्यापार

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2025.v16i03.71

करना था। तिब्बत से ये लोग नमक, सुहागा, सोना, जानवरों की खालें, ऊन, खच्चर तथा भेड़–बकरियाँ लाते थे, जबकि यहां से चावल, गुड़, बर्तन और सर्दियों में महिलाओं द्वारा तैयार किए गए ऊनी वस्त्र आदि वस्तुएं तिब्बत ले जाते थे। सन् 1962 में चीन द्वारा भारत पर आक्रमण करने के कारण उनका यह ऊनी व्यापार बंद हो गया और इन्हें इनके मूल गांव नेलांग और जादूंग से खाली कराकर हर्षिल के पास बगोरी (ग्रीष्मकालीन निवास) तथा उत्तरकाशी के पास डुंडा (शीतकालीन निवास) में बसाया गया।

शोध उद्देश्य

इस शोध के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

- जाड़ जनजाति की पारंपरिक ऊन बुनाई तकनीकों का अध्ययन करना ।
- बुनाई से जुड़े सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्व को समझना।
- वर्तमान समय में इन तकनीकों के सामने आने वाली प्रमुख चुनौतियों का विश्लेषण करना।

शोध पद्धति

यह शोध वर्णनात्मक एवं गुणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है,जिसका मुख्य उद्देश्य उत्तराखंड के उत्तरकाशी जनपद की जाड़ जनजाति की पारंपरिक ऊन बुनाई परंपरा का दस्तावेजीकरण एवं विश्लेषण करना है। अध्ययन क्षेत्र के रूप में उत्तरकाशी जनपद के डुंडा और बगोरी गांव का चयन किया गया, जो कि जाड़ जनजाति की सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का प्रमुख केंद्र है। प्राथमिक आंकड़ों के संकलन के लिए विशेष रूप से ऊन बुनाई में संलग्न महिलाओं से प्रत्यक्ष संवाद स्थापित किया गया, ताकि उनकी परंपरागत तकनीकों, दैनिक जीवन और बुनाई प्रक्रिया से जुड़ी चुनौतियों को समझा जा सके । इस संदर्भ में उनके कार्य का प्रत्यक्ष अवलोकन किया गया और साक्षात्कारों के आधार पर प्राप्त अनुभवों का लिपिबद्ध संकलन किया गया। संकलित आंकड़ों का विश्लेषण विषयवस्तु विश्लेषण पद्धति के अंतर्गत किया गया है। इसके अतिरिक्त, जाड़ जनजाति की ऊन बुनाई और सांस्कृतिक पहलुओं से संबंधित प्रकाशित और अप्रकाशित अभिलेखों, पुस्तकों, पत्रिकाओं, शोध पत्रों, वेबसाइट और जर्नलों से प्राप्त द्वितीयक स्रोतों का भी उपयोग किया गया है। इन स्रोतों का उपयोग करके अध्ययन को एक मजबूत आधार प्रदान किया गया है, जिससे शोध के निष्कर्षों को विश्वसनीय और प्रामाणिक बनाया जा सके।

जाड़ जनजाति की पारंपरिक ऊन बुनाई की प्रक्रिया :

जाड़ जनजाति ने अतीत में ऊन से कपड़े और अन्य वस्तुओं को बनाने की एक अनूठी कला विकसित की है। यह कला पूर्णतः हस्तनिर्मित और पर्यावरण के अनुकूल है। इससे न केवल उनकी स्थानीय आवश्यकताएँ पूरी होती है। बल्कि रोजगार के अवसर भी प्राप्त होते है।

गर्मियों के समाप्त होने पर, जब भेड़ें पहाड़ों में चरकर मोटी हो जातीं और उनकी ऊन भी पूरी तरह विकसित हो जाती, तब जाड़ जनजाति के लोग बगोरी से नीचे अपने शीतकालीन आवास डुंडा लौट आते थे, ताकि वे अपनी बुनाई का कार्य पुनः शुरू कर सकें। इस पारंपरिक बुनाई प्रक्रिया में मुख्य रूप से निम्नलिखित चरण शामिल होते हैं:

• **ऊन काटना (Shearing) :** इस चरण में पशु (भेड़ों और बकरियाँ) के शरीर से ऊन निकाली जाती है। परंपरागत रूप से, भेड़ों की ऊन काटने के लिए पुरुष 'चंबा' नामक कैंची जैसे उपकरण का उपयोग करते थे, जो एक अत्यंत श्रमसाध्य और समय लेने वाला कार्य था। वर्तमान समय में, ऊन निकालने की प्रक्रिया को आसान और त्वरित बनाने के लिए ट्रिमर का उपयोग किया जाता है।

• **छंटाई (Grading) :** इस चरण में ऊन को उसकी गुणवत्ता के आधार पर अलग किया जाता है। इसके लिए ये लोग ग्रेडिंग टेबल का इस्तेमाल करते है, जिस पर ऊन को फैलाकर साफ और अच्छी गुणवत्ता वाली ऊन को अलग कर लिया जाता है, जबकि दाग–धब्बों वाली या खराब ऊन को अलग रखा जाता है। ऊन की लंबाई और महीनता के आधार पर भी उसका वर्गीकरण किया जाता है। जो ऊन लंबी और मुलायम होती है, उसका इस्तेमाल कपड़े बनाने में किया जाता है, जबकि मोटी और खुरदरी ऊन से रजाई, कालीन जैसे भारी और टिकाऊ सामान तैयार किए जाते है।

• **सफाई (Scouring) :** इस चरण में ऊन के रेशों से धूल, दाग–धब्बे, चिकनाई जैसी सभी गंदगियों को साफ किया जाता है। जाड़ जनजाति के लोग इसके लिए गुनगुने पानी का उपयोग करते है। वे ऊन को तब तक पानी में भिगोकर रखते थे जब तक पानी हल्का गुनगुना न हो जाए। यह गुनगुना पानी उबालने की बजाय प्राकृतिक गर्म जलस्रोत से प्राप्त किया जाता है। यदि ऊन अधिक गंदी होती है, तो उसमें रीठा का घोल मिलाकर उसे साफ किया जाता है। इसके बाद ऊन को दोबारा गुनगुने पानी से धोकर धूप में सुखाया जाता है, जिसमें आमतौर पर 2 से 3 दिन लगते है। इस प्रक्रिया से ऊन की सुंदरता और गुणवत्ता में सुधार आता है। धोने के बाद ऊन में फंसे कांटेदार तत्वों (जैसे सूखे फूलों के हिस्से) को हाथ से निकाला जाता है, जो एक बेहद मेहनतभरा और समय लेने वाला कार्य होता है। इस प्रकार, यह सफाई और स्कारिंग की प्रक्रिया ऊन की बुनाई या धागा बनाने से पहले का एक आवश्यक और महत्वपूर्ण चरण होता है।

• **कार्डिंग (Carding) :** कार्डिंग का मतलब होता है ऊन के रेशों को एक दिशा में सीधा और सुलझाना ताकि उससे धागा बनाना आसान हो जाए। यह काम पूरी तरह हाथ से किया जाता है, और इसके लिए लकड़ी से बने खास ब्रश जैसे औजार इस्तेमाल होते है, जिनकी सतह पर छोटे, पतले और लचीले कील लगे होते है। इस प्रक्रिया में एक ब्रश को जमीन या गोद में रखकर उस पर ऊन फैलाया जाता है। फिर दूसरे ब्रश से उसे बार–बार ब्रश किया जाता है। इस प्रक्रिया से ऊन में फंसी गंदगी और छोटे टूटे रेशे निकल जाते है, और सारे रेशे एक दिशा में सीधे हो जाते है। जिससे वह अगले चरण यानी सूत कातने (धागा बनाने) के लिए पूरी तरह तैयार हो जाते है।

• **कताई (Spinning) :** कताई का काम जाड़ लोग बहुत सधे हुए तरीके से करते है। इसमें ऊन को पहले कार्डिंग करके सीधा और साफ किया जाता था। फिर उसे बाएँ हाथ में पकड़कर धीरे–धीरे चरखे या तकली में डाला जाता है। अगर चरखा होता है तो वह पैर से चलाया जाता है, और अगर तकली होती है तो उसे हाथ से चलाते है। तकली छोटी और आसानी से ले जाने वाली मशीन होती है, इसलिए इसे मोटा धागा बनाने में इस्तेमाल करते है। बारीक धागा बनाने के लिए चरखा ज्यादा अच्छा माना जाता है। जब धागा बन जाता है, तो उसे एक रील (जिसे बॉबिन कहते हैं) पर लपेट दिया जाता है। धागे को कितना घुमाना है यह ऊन के रेशों की लंबाई और इस्तेमाल

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2025.v16i03.71

पर तय होता है, अगर ऊन लंबे रेशों वाली हो तो कम घुमाने की जरूरत होती है जबकि छोटे रेशों के लिए ज़्यादा घुमाना पड़ता है। ये सारा काम बहुत धैर्य और अनुभव से किया जाता है।

• **रंगाई (Dyeing) :** रंगाई का काम ऊनी धागे को रंगने के लिए किया जाता है। इसके लिए धागों को गुच्छों में बांधकर खुले बर्तन में गर्म पानी वाले रंग के घोल में डुबोया जाता है। जाड़ जनजाति के लोग रंग बनाने के लिए जंगल से मिलने वाले पौधों और पत्तियों का इस्तेमाल करते है, जिनकी खेती नहीं की जाती थी बल्कि ये प्राकृतिक रूप से जंगलों में उगते है। इन पौधों को एक खास मौसम में जंगल से इकट्ठा किया जाता है। इसके बाद पौधों को सुखाकर पीस लिया जाता है, फिर रातभर पानी में भिगोकर उबालकर उसका रंग निकाला जाता है। जो पानी छानकर मिलता है, उसी का उपयोग धागे रंगने में किया जाता है। धागों को इस रंगीन पानी में डालकर तब तक हिलाया जाता है जब तक कि पानी गुनगुना न हो जाए। रंग को टिकाऊ बनाने के लिए इसमें सोडा ऐश मिलाया जाता है। इसके बाद इन धागों को ठंडे पानी से धोकर सूखने के लिए डाल दिया जाता है।

रावत और अन्य (2019) के एक शोध के अनुसार, हिमालयी क्षेत्र में भोटिया जनजाति ऊनी धागों को रंगने के लिए जंगली पौधों की प्रजातियों का उपयोग करते है। इन पौधों में किलमोरा (बर्बेरिस एशियाटिका), अखरोट (जुगलन्स रेगिया), बुरांश (रोडोडेंड्रोन अर्बोरियम), हरदा (टर्मिनलिया चेबुला), चाय की पत्तियाँ, तंत्री (रिउम मूरक्रोफ्टियानम), काफल (माय्रिका एस्कुलेंटा), दारिम (प्यूनिका ग्रैनटम), बागमारू (यूपेटोरियम), और ढोलू (रिउम आयस्ट्रेल) शामिल थे, जिनसे प्राकृतिक रंग तैयार किए जाते थे (शारदा और रस्तोगी, 2013)। वर्तमान में, केवल शौका और जाड़ जनजातियाँ ही प्राकृतिक रंगों का उपयोग करके ऊनी धागों को रंगती हैं।

• **बुनाई (Weaving) :** ऊन का धागा बनने के बाद उससे या तो करघे पर कपड़ा बुना जाता है या सुई से निटिंग की जाती है। बुनाई के लिए दो तरह के करघे होते हैं मोटा कपड़ा बनाने के लिए खड़ा करघा और बारीक कपड़ा बनाने के लिए पिट करघा। निटिंग (दो सुइयों से बुनाई) अब इतनी आधुनिक हो गई है कि डिजाइन उभरे हुए और तीन–आयामी दिखने लगते हैं। साथ ही, भेड़ की ऊन में अगर खरगोश के बाल मिला दिए जाएँ, तो कपड़ा और भी नरम, चमकदार और सफेद हो जाता है। इनकी भाषा में स्वेटर बुनने को ''बनीन ल्या'' कहा जाता है।

जाड़ जनजाति के लोकप्रिय ऊनी उत्पाद और उनका विपणन :

- इस समुदाय द्वारा बनाए गए लोकप्रिय ऊनी उत्पादों में कांशुक(जुराब), लांगशुग(दस्ताना), साय(पगड़ी/टोपी), दोड़ी(रजाई), गड़री(कम्बल), दन(कालीन), गलफन(मफलर), डुमकर(मोटा कंबल), कॉलक(स्त्रियों द्वारा पहना जाने वाला पैरों तक का लम्बा कोट), चपकन(पुरुषों द्वारा पहना जाने वाला ऊनी कोट), पारंपरिक शॉल, ढाबली(पंखी), रबादेन(बकरी की खाल से निर्मित दरी), स्टोल, स्वेटर आदि शामिल है ।
- जाड़ समुदाय की ज्यादातर ऊनी उत्पादों की बिक्री गंगोत्री के वार्षिक उत्सव में होती है। इसके अलावा, वे उत्तरकाशी का माघ मेला, गंगनानी, बागोरी, हर्षिल, भटवाड़ी जैसे गांवों के हाट–बाजार और गंगोत्री–यमुनोत्री क्षेत्र के धार्मिक मेलों में भी अपने हस्तनिर्मित ऊनी उत्पाद बेचते है। पर्यटन स्थलों पर आने वाले देशी–विदेशी पर्यटकों को सीधे बिक्री करना

उनके लिए सबसे लाभकारी होता है, क्योंकि इसमें बिचौलियों का हिस्सा नहीं जुड़ता। कुछ कारीगर अपने उत्पाद स्थानीय व्यापारियों या उत्तराखंड हस्तशिल्प विकास परिषद जैसी सहकारी समितियों को भी देते हैं, जो इन्हें बड़े बाजारों व प्रदर्शनियों तक पहुंचाते हैं। बदलते समय के साथ, कई परिवार अपने उत्पाद देहरादून, ऋषिकेश, दिल्ली जैसे शहरों में भेजने लगे हैं, जबकि नई पीढ़ी सोशल मीडिया और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के जरिए भी अपनी पारंपरिक कला को बाजार में पेश कर रही है।

सामाजिक–सांस्कृतिक एवं आर्थिक महत्व :

जाड़ जनजाति, जिसकी आजीविका का मुख्य आधार ऊन की बुनाई है। यह परंपरागत कला न केवल उनकी आर्थिक स्थिति को मजबूत करती है, बल्कि उनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक ताने–बाने को भी गहराई से प्रभावित करती है। इस जनजाति की सामाजिक–सांस्कृतिक एवं आर्थिक पहचान और महत्व को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है :

- **सामुदायिक एकता और सहयोग :** जाड़ जनजाति में ऊन की बुनाई एक सामूहिक गतिविधि है, जिसमें परिवार के सभी सदस्य मिलकर योगदान देते हैं। पुरुष ऊन कातने और रंगने का काम करते हैं, जबकि महिलाएँ बुनाई और सिलाई में निपुण होती हैं। गाँव की महिलाएँ अक्सर एक–दूसरे के घरों में इकट्ठा होकर बुनाई करती हैं, जिससे न केवल काम में सहायता मिलती है, बल्कि आपसी मेलजोल, दोस्ती और सामुदायिक एकता को भी बढ़ावा मिलता है। यह सामूहिक कार्यशैली सामाजिक बंधनों को मजबूत करती है और समुदाय में विश्वास और सहयोग की भावना को प्रोत्साहित करती है।
- **सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण**: ऊन की बुनाई जाड़ जनजाति की पीढ़ी–दर–पीढ़ी चली आ रही परंपरा है, जिसमें पुराने उपकरण, तकनीकें और डिजाइन आज भी जीवित हैं। चपकन, कॉलक, थुलमा और शॉल जैसे वस्त्र न केवल उपयोगी हैं, बल्कि इस समुदाय की सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक भी हैं। इन वस्त्रों को खास मौकों और त्यौहारों जैसे लोसर पर पहनना गर्व का विषय माना जाता है, जो समुदाय की सांस्कृतिक निरंतरता और गौरव को दर्शाता है। इसके अतिरिक्त, मंदिरों में चढ़ाई जाने वाली चादरें, पूजा के आसन और देवी–देवताओं के लिए बनाए गए कपड़े इस समुदाय की धार्मिक और आध्यात्मिक आस्था को मजबूत करते हैं।
- **आर्थिक और सामाजिक सशक्तिकरण :** ऊन से बने कपड़े, शॉल, बैग, कालीन आदि गाँव के मेलों और बाजारों में बिक्री के लिए उपलब्ध होते हैं, जिससे परिवारों को आर्थिक स्थिरता मिलती है। यह कार्य, विशेष रूप से महिलाओं के लिए, आर्थिक सशक्तिकरण का साधन है, क्योंकि उनकी बुनाई कला न केवल परिवार की आय का स्रोत है, बल्कि उनकी रचनात्मकता और कौशल को भी मान्यता दिलाती है। यह सामाजिक ढांचे में लैंगिक समानता को बढ़ावा देता है, क्योंकि पुरुष और महिलाएँ दोनों ही इस कला में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।
- **पर्यावरण–अनुकूल और टिकाऊ उत्पादन :** इस समुदाय के ऊनी हस्तकला में प्राकृतिक रेशों और प्राकृतिक रंगों का उपयोग किया जाता है, जो इन उत्पादों को पर्यावरण के अनुकूल और टिकाऊ बनाता है। यह विशेषता वैश्विक स्तर पर बढ़ती नैतिक फैशन और

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2025.v16i03.71

पर्यावरण–पर्यटन की मांग के अनुरूप है, परिणामस्वरूप, उत्तराखंड की यह पारंपरिक कला न केवल पर्यावरण संरक्षण में योगदान देती है, बल्कि इसे वैश्विक बाजार में एक विशिष्ट और मूल्यवान स्थान भी प्राप्त होता है।

वर्तमान चुनौतियाँ :

- **बाजार तक सीमित पहुंच :** कारीगरों को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय बाजारों तक पहुँचने में कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। उनकी बिक्री अधिकतर स्थानीय मेलों और हाट–बाजारों तक ही सीमित रहती है, जिसके कारण उनके हस्तनिर्मित उत्पादों की पहचान और बिक्री का दायरा सीमित हो जाता है।
- **पारंपरिक और समय–साध्य तकनीक** : ऊन की कटाई, धुनाई, कताई, रंगाई, और बुनाई जैसी प्रक्रियाएँ अधिकतर हस्तचालित और श्रमसाध्य हैं। आधुनिक मशीनरी और तकनीकी प्रशिक्षण के अभाव में उत्पादन क्षमता सीमित रहती है, जिससे कारीगरों की उत्पादकता प्रभावित होती है।
- **सिंथेटिक और औद्योगिक उत्पादों से प्रतिस्पर्धा :** औद्योगिक स्तर पर बड़े पैमाने पर उत्पादित ऊनी या सिंथेटिक वस्त्र, जो कम लागत और व्यापक उपलब्धता के कारण आसानी से मिल जाते हैं, पारंपरिक हस्तनिर्मित ऊनी उत्पादों की मांग और मूल्य को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हैं।
- **आपूर्ति श्रृंखला की समस्याएँ:** कच्चे माल (विशेष रूप से तिब्बत के साथ सीमा व्यापार पर प्रतिबंध के बाद) की उपलब्धता में कमी और ऊपर से, कभी बर्फबारी, कभी भूस्खलन जैसी प्राकृतिक आपदाएँ आ जाने पर काम रुक जाता है, जिस कारण उत्पादन व परिवहन में बाधाएँ आती हैं।
- **सीमित सरकारी सहायता और प्रचार :** हालाँकि सरकार द्वारा सब्सिडी, प्रशिक्षण, और बुनियादी ढांचे की सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं, किन्तु इनके सतत अनुश्रवण और प्रभावी विपणन रणनीतियों में आवश्यक गंभीरता की कमी दिखाई देती है। जिस कारण उत्तराखंड के ऊनी हस्तकला को वह पहचान नहीं मिल पाती, जिसका वह हकदार है।
- **नई पीढ़ी का कम होता रुझान :** कम आय और बदलती जीवनशैली के कारण युवा पीढ़ी पारंपरिक हस्तकला से दूरी बना रही है। इससे इस कला की निरंतरता और भविष्य पर संकट मंडरा रहा है।

निष्कर्ष :

उत्तरकाशी की जाड़ जनजाति की पारंपरिक ऊन बुनाई न केवल उनकी आजीविका का आधार है, बल्कि यह उनकी सांस्कृतिक पहचान, सामुदायिक एकता और पीढ़ियों से संचित कला–कौशल का प्रतीक भी है। भेड़ों से ऊन काटने से लेकर बुनाई और विपणन तक की संपूर्ण प्रक्रिया में उनकी हस्तकला, धैर्य और रचनात्मकता स्पष्ट झलकती है। यह परंपरा पर्यावरण–अनुकूल, टिकाऊ और स्थानीय संसाधनों पर आधारित होने के कारण आज के वैश्विक नैतिक फैशन और इको–टूरिज्म के संदर्भ में विशेष महत्व रखती है। हालांकि, सीमित बाजार पहुँच, आधुनिक उपकरणों

का अभाव, औद्योगिक उत्पादों से प्रतिस्पर्धा, कच्चे माल की कमी, सरकारी सहयोग की सीमाएँ और नई पीढ़ी का घटता रुझान इस विरासत के संरक्षण में बड़ी चुनौतियाँ हैं। अतः इस पारंपरिक कला को जीवित रखने के लिए प्रशिक्षण, तकनीकी उन्नयन, प्रभावी विपणन, और युवा पीढ़ी को इससे जोड़ने के प्रयास आवश्यक हैं, ताकि जाड़ जनजाति की यह अनूठी बुनाई विरासत आने वाले समय में भी सुरक्षित और प्रासंगिक बनी रहे।

संदर्भ सूची :

1. नैथानी, डॉ. शिवप्रसाद. (2006). उत्तराखण्ड का सांस्कृतिक इतिहास (प्रथम भाग). पौड़ीः पवेत्री प्रकाशन.
2. सांकृत्यायन, राहुल. (1958). कुमाऊं. इलाहाबाद
3. ममगाई, सुरेश. (2016). मध्य हिमालय की जाड़ जनजाति का सांस्कृतिक संघर्ष. दिल्लीः साहित्य सहकार प्रकाशन
4. डबराल, शिवप्रसाद. 2052 विक्रमी. उत्तराखण्ड के भोटान्तिक. गढ़वाल, दोगडाः वीरगाथा प्रकाशन.
5. Channa, S. M. (2013). The inner and outer selves: Cosmology, gender, and ecology at the Himalayan borders. Oxford University Press.
6. Sherring, C. A. (1993). Western Tibet and the British Border Land. New Delhi: Asian Education Services.
7. Singh, V., & Goswami, D. C. (2020, April). Changing pattern of transhumance pastoralism in Upper Bhagirathi Basin: A case study of Jaad Bhotiya community. International Journal of Innovative Research and Advanced Studies (IJIRAS)
8. Bisht, B. S. 2004. Tribes of Uttaranchal: A Study of Education, Health, Hygiene and Nutrition. Delhi: Kalpaz Publications.
9. Dash, Chittaranjan. (2006). Social Ecology and Demographic Structure of Bhotia Narratives and Discourses. New Delhi: Concept Publishing Company.
10. Rawat, H., Rani, A., and Goel, A. 2019.Sustainable traditional dyeing of wool by Bhotia tribe in Himalayan region: A case study. Journal of Applied and Natural Science, 11(2): 379- 383 https://doi.org/10.31018/jans.v11i2.2068
11. Dantyagi, S. (1983). Fundamentals of Textiles and their care, 4th Ed. Orient Longman, New Delhi.
12. Chatterjee, Bishwa B. "The Bhotias of Uttarakhand." India International Centre Quarterly 3, no. 1 (January 1976): 3–16. https://www.jstor.org/stable/23001864
13. Baral, Bibhudatta et al. "Woolen Pile Carpets: Uttarakhand." D'source: Resources. Accessed December 17, 2022. https://dsource.in/sites/default/files/resource/woolen-

p i l e - c a r p e t s - u t t a r a k h a n d / d o w n l o a d s / f i l e / 88_147_woolen_pile_carpets_uttarakhand.pdf.

14. Dhar, Shivani. "Woolen Weaves of the Hills." Gaatha. March 11, 2010. Accessed December 17, 2022. https://gaatha.com/woolen-weaves-of-the-hills/.
15. "Bhotiyas and Himalayan Wool." Himalayan Weavers. Accessed December 6, 2024. https://himalayanweavers.org/bhotiyas-and-himalayan-wool/.
16. Ranjan, Aditi, and M. P. Ranjan. Handmade in India: Crafts of India. New Delhi: Mapin, 2007
17. Chakrabarty, Anjali. "From Creating Carpets to Crushing Stones." People's Archive of Rural India (PARI), October 31, 2017. Accessed December 14, 2022. https://ruralindiaonline.org/en/articles/from-creating-carpets-to-crushing-stones/.
18. Pant, S.C., and Pandey, M.2015. Supply Chain Challenges: A case study of Uttarakhand Woolen Handicraft Industry. International Journal of Management, IT and Engineering. 140-155. 5 (6). ISSN: 2249-0558. https://www.researchgate.net/publication/336994910
19. Sharda, N.L. and Rastogi, D. (2013). Unexplored treasure of the Garhwal Himalayas: Dye yieldfor sustainable dyeing. Journal of Academia and Industrial Research, 2(3), 155-159.
20. Singh, Varsha. 2022, In Uttarakhand, the centuries-old nomadic lifestyle of shepherds is now in danger https://amp.scroll.in/article/1015705/in-uttarakhand-the-centuries-old-nomadic-lifestyle-of-shepherds-is-in-danger
21. Puskar, (2012). Economic importance of Sapindus mukorossi. Retrieved September 26 2018 from http://greencleanguide.com/economic-importance-of-sapindus-mukorossi/